शिवप्रोक्त गीताओं में शिवतत्त्व

त्रिलोकी के गुरु भगवान् शंकर स्वभाव से ही विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय, परमानन्दमय, सर्वतन्त्र-स्वतंत्र एवं अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न हैं। प्राय: सभी शैवागमों और पुराणों का यही स्पष्ट कथन है कि भगवान् शिव में सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिज्ञान, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्तशक्ति एवं अनन्त शक्ति-ये छ: तत्त्व सदा विद्यमान रहते हैं।

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध: स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति:।
अनन्त शक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा: षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य:।।

(वायु पु. 1/12/31 तथा ईश्वरगीता 8/13)

भगवान् शंकर में ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश एवं कान्ति अक्षुण्णरूप से स्थिर रहते हैं इसलिये उनकी भगवान् संज्ञा सार्थक है। उन्हें त्रिभुवनगुरु कहा गया है। प्राय: सभी आगम तथा रहस्य आदि उनके द्वारा ही उपदिष्ट हैं। आगम उन्हें कहते हैं जो शिव द्वारा उपदिष्ट हैं।

आगंत शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ।
तस्मादागम इत्युक्तो विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभि:।। (कुलार्णवतन्त्र 17)

शैवागमों के अतिरिक्त यामल, डामर, सौर-आगम यहाँतक कि वैष्णव आगमों की अहिर्बुध्न्य, सदाशिव तथा सनत्कुमार आदि संहिताएँ भी भगवान् शिव द्वारा उपदिष्ट हैं किन्तु इन सब में शिव-गीताएँ विशेष महत्त्व की हैं।

यद्यपि शिवप्रोक्त गीताएँ अनेक हैं जो पद्म[1], कूर्म[2], वराह[3], स्कन्द[4] आदि पुराणों में बिखरी हुई हैं पर इनमें से शिवगीता, ईश्वरगीता तथा महेश्वरगीता[5] को ही प्रस्तुत लेख में सम्मिलित किया जायगा।

शिवगीता में शिवतत्त्व

सभी शिवप्रोक्त गीताओं में यह सबसे बड़ी है जिसमें लगभग 850 श्लोक पाये जाते हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थपर अत्यन्त विशिष्ट विद्वानों की अनेक व्याख्याएँ, टीकाएँ तथा भाष्यादि भी उपलब्ध हैं अत: यह उपनिषदादि की तरह प्रामाणिक मानी जाती है। टीकाओं में तात्पर्यबोधिनी, तात्पर्यदीपिका, शिवगीताव्याख्या, शिवगीताभाष्य, तात्पर्यप्रकाशिका आदि संस्कृत टीकाएँ विशेषरूप से उल्लेख्य हैं। इनमें से अधिकांश अद्वैत वेदान्त के उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा निर्मित हैं।

श्रीमत्परमशिवेन्द्र सरस्वती द्वारा रचित 'तात्पर्यप्रकाशिका' नाम की व्यख्या काफी विस्तृत एवं मूलग्रंथ को स्पष्ट करनेवाली है। कुछ स्थलों पर इन्होंने श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, आगम, व्याकरण एवं वेदान्तादि दर्शनों के वचनों से तथा कालाग्नि, रुद्र, जाबाल, मुण्डक, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर,

---

1. शिवगीता 2. ईश्वरगीता 3. रुद्रगीता 4. ब्रह्मगीता

5.'महेश्वरगीता' महाभारत के दाक्षिणात्य पाठ के अनुशासनपर्व के अन्तर्गत पायी जाती है। इसके बहुत से श्लोक उत्तरभारतीय पाठवाले गीताप्रेस, गोरखपुर से छपे महाभारत के अनुशासनपर्व (के 141 से 143 अध्याय) में भी प्राप्त होते हैं।

अर्थवशिरस् तथा बृहज्जाबाल आदि उपनिषदों के वचनों और लौगाक्षि, भारद्वाज, मनु, बोधायन आदि स्मृतियों, स्मृतिरत्नावली, धर्मसारसुधानिधि, स्मृतिसारसमुच्चय आदि निबंध-शास्त्रों एवं शिवरहस्य, सूतसंहिता, शंकरसंहिता, सौरसंहिता, अंशुमद्भेदागम आदि विशिष्ट ग्रन्थों के अनेक वचनों से शैवज्ञान की पुष्टि की है।

शिवगीता को पद्मपुराण के अन्तर्गत बताया गया है किन्तु वर्तमान में उपलब्ध पद्मपुराण के संस्करणों में यह उपलब्ध नहीं होती। नारद पुराण में 18 पुराणों की विषयसूची को संक्षेप में बताया गया है। उसमें पद्मपुराण के पतालखण्ड के विषयों के अन्तर्गत शिवगीता का उल्लेख है-

.....

गौतमारव्यानकं चैव शिवगीता ततः स्मृता।
कल्पान्तरी रामकथा भारद्वाजाश्रमस्थितौ।।

..... (नारदपु. पूर्वभाग-चतुर्थपाद)

(.....गौतम का उपारव्यान और शिवगीता तथा कल्पान्तर में भरद्वाजआश्रम में श्रीरामकथा आदि विषय पातालखण्ड के अन्तर्गत हैं।)

शिवगीता के उपोद्घात में श्रीसूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा है कि मोक्ष दान तथा तप आदि कर्मों के अनुष्ठानों से प्राप्त नहीं होता अपितु, ज्ञान ही मोक्ष का कारण है (शिवगीता 1/2) और इस ज्ञान का गुप्त रहस्य शिवगीता में प्रकाशित है, जिसे दण्डकारण्य में भगवान् शंकर ने उस समय श्रीराम को उपदिष्ट किया था, जिस समय रावण द्वारा सीता का अपहरण हो चुका था और सीता के वियोग में विलाप करते हुए श्रीराम की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी[1]। पुण्यों से ही शिवचरित्र सुनने की इच्छा होती है तथा शिव-चरित्र-श्रवण से ज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे जीव की मुक्ति होती है। अतः एकमात्र भगवान् शिव ही ध्येय हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को वायु, रुद्र, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु आदि का कर्त्ता बताया गया है (शि. गी. 3/20-21)। उन्हें सर्वव्यापी, धाता, विधाता, कालाग्नि एवं परमात्मा कहा गया है। उन्हें देवता, मुनि, ब्रह्मा, इन्द्र, मनु आदि कोई भी यथार्थरूप से नहीं जानता (17/27-29)। भगवान् शिव ही वेदों द्वारा स्तुत्य हैं। पितामह ब्रह्मासहित सम्पूर्ण लोक जिनको नमस्कार करते हैं तथा योगीजन जिनका ध्यान करते हैं और जो कर्मों का फल देनेवाले हैं, वे ही भगवान् शिव हैं (17/31-32)।

भगवान् शिव कहते हैं कि "आदि में मैं जगत् की सृष्टि करने से परमेष्ठी ब्रह्मा कहा जाता

1. लीलावश भगवान् राम ने अपने को शोचनीय स्थिति में डाला था ताकि उससे लोककल्याण एवं आदर्श की स्थापना तथा नारदादि भक्तों के संकल्प पूरे हो सकें।

हूँ तथा पालन करने से उत्तम पुरुष परमात्मा इस नाम से गाया जाता हूँ। मैं ही सम्पूर्ण योगियों का अविनाशी गुरु हूँ.....मैं ही योगियों को संसारबंधन के सभी प्रकार के क्लेश से छुड़ानेवाला हूँ .....मैं ही संसार को उत्पन्न, पालन तथा संहार करनेवाला हूँ.....मेरी महाशक्ति लोकों को मोहनेवाली माया है.....मैं योगियों के हृदय में स्थित होकर माया का नाश करता हूँ.....मैं ही सम्पूर्ण जगत् हूँ और मुझमें ही सब जगत् है। अर्थात् सबकुछ मैं ही हूँ.....मैं ही भगवान्, ईश्वर, स्वयंज्योति एवं सनातन हूँ, मैं ही परमात्मा परब्रह्म हूँ, मुझसे परे दूसरा कोई नहीं है।"

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मा हि गीयते।।
अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः।
.....
अहं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह।
.....
अहमेव हि संहर्ता स्रष्टाहं परिपालकः।
माया वै मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी।।
.....
नाशयामि च तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः।। (शिवगीता 17/40-44)
अहमेव जगत्सर्वं मय्मेव सकलं जगत्।।
.....
अहं हि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातन।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते।। (शि. गी. 17/46-47)

आगे बताया गया है कि भगवान् शिव की एक शक्ति जगत् की सृष्टिकरने के कारण ब्रह्मा दूसरी शक्ति जगत् का पालनकरने के कारण विष्णु तथा तीसरी शक्ति संहारकरने के कारण रुद्र कहलाती है (शि. गी. 17/48-50, 58; 5/36, 37)।

भगवान् शिव सगुण एवं निर्गुण दोनों ही हैं। लीलावश वे सगुण हो जाते हैं। शिवगीता के छठे अध्याय में भगवान् राम शिवजी से पूछते हैं कि- "आप कहते हैं कि मैं ही जगत् की उत्पत्ति और पालनकर्त्ता हूँ इसमें मुझे बड़ा आश्चर्य है। स्वच्छ स्फटिकमणि के समान जिनका शरीर और तीन नेत्र तथा मस्तक पर चन्द्रमा है आप ऐसे परिच्छिन्न और पुरुषाकृति मूर्ति धारण किये हैं और पार्वती-सहित प्रमथ आदि गणों के साथ यहीं विहार करते हैं फिर आपने पंचभूतादि यह चराचर जगत् कैसे पैदा किया है?" (शि. गी. 6/1-3)।

उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि हे राम! यह सब तो देवताओं की भी

बुद्धि में नहीं आता पर मैं तुमसे कहता हूँ। पंच महाभूत, चौदह भुवन, समुद्र, पर्वत, देवता, राक्षस, ऋषि, स्थावर-जंगम, गन्धर्व, प्रमथ, नारद आदि जो दीखते हैं यह सब मेरी विभूति हैं। सृष्टि से पहले मैं ही था, वर्तमान में भी मैं ही हूँ और अन्त में भी मैं ही रहूँगा। इस लोक में मेरे सिवा और कुछ भी नहीं है। मुझसे अलग कोई वस्तु नहीं है। नित्य एवं अनित्य मैं ही हूँ। मैं ही सावित्री, गायत्री, स्त्री, पुरुष, नपुंसक हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, उमा, स्कन्द, गणपति, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, यह सात लोक, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि यह सब मैं ही हूँ। (शि. गी. 6/4-6, 10-11, 13, 22-23)

ब्रह्मा विष्णुर्महेशोऽहमुमा स्कन्दो विनायकः।
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चाहं निर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः।।
कुबेरोऽहं तथेशानो भूर्भुवः स्वर्महर्जनः।
तपः सत्यं च पृथ्वी चापस्तेजोऽनिलोप्यहम्।। (शि. गी. 6/22-23)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि-ब्रह्मा, हरि, भगवान् व और दूसरे देव भी मेरा आदि और अंत नहीं जानते अतः मैं अनन्त हूँ।[1]

ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान्।
ततोऽन्ये च सुरायस्मानन्तोऽहमितीरितः।। (शि. गी. 6/33)

प्रलयकाल में कोई दूसरा स्थित नहीं रहता केवल मैं ही तीनों गुणों से परे स्वयं ब्रह्मरुद्रस्वरूप सब प्राणियों को अपने में लय करके स्थित होता हूँ।

न द्वितीयो यतश्चास्ति तुरीयं ब्रह्म यत्स्वयम्।
भूतान्यात्मनि संहृत्य चैको रुद्रो वसाम्यहम्।। (शि. गी. 6/38)

पुनः मैं चर और अचर जगत् के सभी प्राणियों का सदा ईश्वर हूँ तथा सब विद्याओं का अधिपति हूँ। इससे मेरा ईशान नाम सार्थक है-

ईशानश्चास्मि जगतां सर्वेषामपि सर्वदा।
ईशानः सर्वविद्यानां यदीशानस्ततोऽस्म्यहम्।। (शि. गी. 6/40)

मैं निरन्तर सब लोकों की उत्पत्ति, पालन और संहार करता हूँ, इस कारण मुझे महेश कहते हैं।(शि. गी. 6/42)।

सभी वस्तुएँ मुझ ही से उत्पन्न हैं और मुझमें ही प्रतिष्ठित हैं और अंत में मुझमें ही लय हो जाती हैं। मैं ही अद्वय ब्रह्म हूँ। मैं ही सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और महान् से भी महान् हूँ। मैं ही विश्वरूप निर्लेप पुरातन पुरुष सर्वेश्वर तेजोमय और शिवरूप हूँ(शि. गी. 6/52-53)। जो मुझे तत्त्व से जानता

1. यहाँ निर्गुण सदाशिव को लक्ष्य करके कहा गया है कि उन्हें सगुण ब्रह्मा व हरि आदि नहीं जानते। वास्तव में निर्गुणरूप में तीनों एक ही तत्त्व हैं।

है वही संसार से मुक्त होता है(शि. गी. 6/57)।

उपरोक्त तथा अन्यान्य भगवान् शिव की विभूतियों के सुनने के उपरान्त रामजी पूछते हैं- "हे भगवन् ! जो कुछ मैंने प्रश्न किया है वह तो उसी प्रकार स्थित है। हे महेश्वर! आपने उस विषय का कोई उत्तर नहीं दिया। आपका देह परिच्छिन्नपरिमाणवाला है फिर सब संसार की उत्पत्ति, पालन एवं नाश आप किस प्रकार करते हैं"?(शि. गी. 7/1-2)

उपरोक्त प्रश्न करने पर भगवान् शिव कहते हैं कि सूक्ष्म वट के बीज में जिस प्रकार महान् वट का वृक्ष छिपा रहता है और उसी से वह वृक्ष स्थूलरूप में भी प्रकट हो जाता है उसी प्रकार मेरे सूक्ष्म शरीर से सब भूतों का जन्म, पालन और नाश होता है(शि. गी. 7/5)। इस उत्तर से भी श्रीराम को संतुष्टि नहीं हुई तब भगवान् शिव ने उन्हें दिव्यनेत्र देकर अपना दिव्यरूप दिखाया जिसे देखकर संतुष्ट हो भगवान् शिव की उन्होंने स्तुति की। इस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव की उन सभी विभूतियों का वर्णन किया है जिसका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं।

वे कहते हैं -"हे भगवन्! सच्चिदानन्दरूप समुद्र में हंसरूप, नीलकण्ठ, कालस्वरूप भक्तजनों के सम्पूर्ण पातक दूर करनेवाले तथा सबके साक्षी आपको नमस्कार है"। (शि. गी. 7/37)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भगवान् के सगुण-साकाररूप को बुद्धि से नहीं जाना जा सकता क्योंकि वह तो भगवान् की लीला(जो माया को धारणकर होता है) का एक अंग होता है। उसका ज्ञान तो शिव की कृपा से ही हो सकता है। जब वह जिसको दिव्य नेत्र देता है उसे ही उसकी माया समझ में आती है।

नवें अध्याय में भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि संसार मुझसे ही उत्पन्न होता है और मुझसे ही धारण किया जाता है। मैं संगरहित निरहंकार शुद्ध सनातन ब्रह्म हूँ, मैं अनादिसिद्ध माया से युक्त होकर जगत् का कारण होता हूँ। मेरी माया का वर्णन नहीं हो सकता। उसमें सत्त्व, रज तथा तम ये तीन गुण रहते हैं। (शि. गी. 9/1, 3-4)

मत्तो हि जायते विश्वं मयैवैतत्प्रधार्यते।।
असंगो निरहंकारः शुद्धं ब्रह्म सनातनः।
अनाद्यविद्यायुक्तः सञ्जगत्कारणतां व्रजेत्।।
अनिर्वाच्या महाविद्या त्रिगुणा परिणामिनी।
रजः सत्त्वं तमश्चेति त्रिगुणाः परिकीर्तिताः।। (शि. गी. 9/1, 3-4)

दसवें अध्याय में भगवान् शिव कहते हैं- "मैं ही सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमानन्द, परमात्मा, परमज्योति, माया से मोहित जीवों को न दीखनेवाला, संसार का कारण, नित्य विशुद्ध, सर्वात्मा, सर्वान्तर्यामी, निःसंग, क्रियारहित, सब धर्मों तथा मन से परे हूँ। मुझे कोई इन्द्रिय नहीं ग्रहण कर सकती, मैं सम्पूर्ण का ग्रहण करनेवाला हूँ, मैं सम्पूर्ण लोकों का ज्ञाता हूँ परन्तु मुझे कोई नहीं

जानता। मैं सम्पूर्ण विकारों से रहित हूँ, (बाल्य, यौवनादि)परिणाम आदि विकार भी मुझमें नहीं हैं, जहाँ मन के सहित वाणी जाकर निवृत्त हो जाती है उस आनन्दब्रह्म मुझको प्राप्त होकर प्राणी कहीं से भी भय को प्राप्त नहीं होता।" (शि. गी. 10/5-9)

सत्यज्ञानात्मकोऽनन्तः परमानन्दविग्रहः।
परमात्मा परं ज्योतिरव्यक्तोव्यक्तकारणम्।।
नित्यो विशुद्धः सर्वात्मा निर्लेपोऽहं निरञ्जनः।
सर्वधर्मविहीनश्च ग्राह्यो मनसापि च।।
नाहं सर्वेन्द्रियग्राह्यः सर्वेषां ग्राहको ह्यहम्।
ज्ञाताहं सर्वलोकस्य मम ज्ञाता न विद्यते।।
दूरः सर्वविकाराणां परिणामादिकस्य च।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।।
आन्नदं ब्रह्म मां ज्ञात्वा न बिभेति कुतश्चन।। (शि. गी. 10/5-9)

वहीं पर आगे कहा गया है- "अनादि माया से युक्त निर्विकार अविनाशी एक मैं ही नामरूप-रहित ब्रह्म जगत् का कर्त्ता परमेश्वर हूँ।"

अनाद्यविद्यया युक्तस्तथाप्येकोऽहमव्ययः।
अव्याकृतब्रह्मरूपो जगत्कर्ताहमीश्वरः।। (शि. गी. 10/13)

उपरोक्त संदर्भों के अतिरिक्त भी अनेक स्थलों पर भगवान् शिव को ही परमसत् अथवा ब्रह्म माना गया है। ब्रह्म होने के नाते शास्त्रों में वर्णित ब्रह्म की सभी विशेषताएँ भी उनमें पायी जाती हैं। उन विशेषताओं से संबधित अनेकों सन्दर्भ शिवगीता में बिखरे हुए हैं जैसे- (12/3, 5; 13/15-16; 14/1-3; 6/1-57 आदि)

शिवभक्ति की महिमा

शिवगीता के प्रथम अध्याय में सूतजी कहते हैं कि करोड़ जन्मों के पुण्यसंचय होने से शिव में भक्ति उत्पन्न होती है। शिवजी की कृपा से जब प्राणी दृढ़ भक्तिमान् होता है, तब भक्ति में विघ्न डालनेवाले देवता भयभीत हो चले जाते हैं। उस भक्ति के करने से शिवजी के चरित्रश्रवण करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है जिसके सुनने से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है। जिसकी शिवजी में दृढ़ भक्ति है वह करोड़ों पापों से ग्रसा हो तो भी मुक्त हो जाता है। अनादर से, मूर्खता से, परिहास से, कपट से भी जो मनुष्य शिवभक्ति करते हैं वे चांडाल होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं।(शि. गी. 1/16-21)

अनादरेण शाठ्येन परिहासेन मायया।
शिवभक्तिरतश्चेत्स्यादन्त्यजोऽपि विमुच्यते।। (शि. गी. 1/21)

इस कारण से शिवभक्ति सदा सबके करने योग्य है। इस प्रकार की भक्ति(अर्थात् शिवभक्ति)

के वर्तमान रहनेपर भी जो मनुष्य संसार से न छूटे तो उसके समान दूसरा कोई भी मूर्ख नहीं। शिवजी भक्त के अतिरिक्त उनसे नियमपूर्वक द्रोह करनेवाले पर भी प्रसन्न हो मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। जो लोग केवल जल को ही नियम से शिवार्पण करते हैं उनसे भी शिवजी प्रसन्न होकर त्रैलोक्य दे देते हैं और जो यह भी न कर सकें तो नियम से नमस्कार व प्रदक्षिणा करें। जो प्रदक्षिणा में भी असमर्थ हों तो केवल मन में ही शिवजी का ध्यान करें। (शि. गी. 1/22-26)

चलते-बैठते भी जो उनका स्मरण करते हैं उनको भी वे अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं। चन्दन, बेलकाष्ठ तथा वन में उत्पन्न हुए फूल-फल शिवजी को अधिक प्रिय हैं(ग्राम-नगर में उत्पन्न उत्तम फल-फूलों में उनकी प्रीति कम है)। इन पदार्थों से उनकी सेवा करने पर सभी दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं।(शि. गी. 1/27-29)

जो व्यक्ति ऐसे देवता को छोड़कर अन्य देवता का भजन-सेवन करता है, वह मानो गंगा को छोड़कर मृगतृष्णा के जल की इच्छा करता है। परन्तु जिनको करोड़ों जन्मों के पाप चिपट रहे हैं, तथा जिनका चित्त अज्ञान के अंधकार से आच्छादित हो रहा है, उनको शिवजी की भक्ति प्रकाशित नहीं होती। शिवभक्ति में देश, काल तथा स्थान का कुछ नियम नहीं है, जहाँ जिसका चित्त रमे वहीं ध्यान करे।(शि. गी. 1/30-32)

न कालनियमो यत्र न देशस्य स्थलस्य च।
यत्रास्य चित्तं रमते तस्य ध्यानेन केवलम्।। (शि. गी. 1/32)

भगवान् राम ने वनवास के दौरान किष्किन्धा में अगस्त्यजी के निर्देशन में लिंगपूजा कर भगवान् शिव को प्रसन्न किया था फलस्वरूप उन्हें शिवगीता का ज्ञान तथा दिव्यधनुष, अक्षयतरकस और महापाशुपतास्त्र प्राप्त हुए।(शि. गी. 4/2-4 तथा 5/13)

भगवान् शिव रामजी को कह रहे हैं कि मेरी त्रिगुणात्मक माया का उल्लंघन करना महाकठिन है। जो मेरी शरणागत होकर मुझको प्राप्त हो जाते हैं वे ही इस माया को तरते हैं।(शि. गी. 14/34-35)

पुनः अनेक प्रकार की योनियों में उत्पन्न हुए किसी एक प्राणी की करोड़ों जन्म के संचित पुण्य से मेरे प्रति भक्ति जाग्रत होती है, वही श्रद्धायुक्त मेरा भक्त ज्ञान को प्राप्त करता है। इस कारण(हे राम!) और सब त्यागकर केवल मेरी भक्ति करो। दूसरे और सब धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण में हो, मैं तुमको सब पापों [1] से छुड़ाकर मुक्त कर दूँगा, तुम सोच मत करो।(शि. गी. 14/38-40)।

1. यहाँ इस कथन से यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान् राम पापी थे। भगवान् राम नरलीला के माध्यम से जगत् का हित एवं आदर्श स्थापित करना चाहते थे। मनुष्य पर दुःख पूर्वकृत पापों के कारण आते हैं (**पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः**, ब्रह्मवैवर्त पु., ब्रह्मखण्ड 16/51)। नरलीला के दौरान राम को वनवास तथा सीताहरण आदि का दुःख मिला। इस दुःख को सामान्य जन पूर्वपापों का परिणाम ही मानेंगे। इसीलिये यहाँ यह उपदेश दिया गया है कि शिव की शरण लेने से अथवा शिवभक्ति से पूर्वपाप समाप्त हो जाते हैं।

शिवोपासना

शिवगीता में निर्गुण, सगुण, ज्ञान, भक्ति एवं योग आदि अनेक तरह की उपासनाओं का उल्लेख है। सगुणोपासना में लिंगार्चन, भस्म, रुद्राक्ष, (सहस्र)नाम-जप आदि का महत्त्व बताया गया है। ज्ञानयोग की साधना में सभी वस्तुओं को भगवान् शिव की विभूति मानकर उनमें समदृष्टि रखना तथा आत्मस्वरूप का सतत चिन्तन करना, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना आदि का निर्देश किया गया है। अन्त में भक्तियोग की चर्चा करते हुए उसे श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है कि भगवान् शिव इससे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं।

जो शान्ति आदि साधन से युक्तहोकर श्रवण, मनन, निदिध्यासनपूर्वक शिव को ही आत्मरूप जानता है वह अद्वैत स्वप्रकाश ब्रह्म के तद्रूप को प्राप्त होता है, जो जीव का यथार्थ स्वरूप है। अद्वैत ब्रह्म को आत्मरूप जानकर सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् को जो शिव के ही रूप में देखता है उसकी यथासमय शिवस्वरूप के ज्ञान से अविद्या नष्ट हो जाती है और वह मन, वाणी से परे शिव का सायुज्य प्राप्त कर लेता है।(शि. गी. 13/8-14)

राम भगवान् शिव से पूछते हैं कि जो अतिसूक्ष्म और इन्द्रियों से अग्राह्य है वह ब्रह्म ग्राह्य कैसे हो सकता है? उस सूक्ष्म में चित्त की वृत्ति किस प्रकार हो सकती है? इसका उपाय बताईये(शि. गी. 14/4)। इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव का यह कथन है कि जो निर्गुण को कठिन समझते हैं वे पहले सगुण उपासना करें, किसी भी सगुण उपासना करनेवाले की अधोगति नहीं होती(शि. गी. 11/54)। वे आगे कहते हैं-पहले सगुण उपासना करते-करते चित्त को एकाग्र करें और बाद में निर्गुणस्वरूप में चित्त की वृत्ति प्रवृत्त करें।(शि. गी. 14/5)

उपासना के सन्दर्भ में भगवान् शिव रामजी से कहते हैं कि जितने देवता हैं यह सब मेरे ही रूप हैं, वास्तव में मुझसे भिन्न नहीं हैं। जो दूसरे देवताओं के भक्त हैं और श्रद्धापूर्वक उनका पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही भेदबुद्धि से यजन करनेवाले हैं। इस सम्पूर्ण संसार में मेरे सिवा और कुछ नहीं है, इसी कारण से मैं सब क्रिया का भोक्ता और सबका फल देनेवाला हूँ। जो पुरुष जिस भाव से मेरी उपासना करते हैं, उसी भावना के अनुसार उसी देवता के रूप में मैं उन्हें वांछित फल देता हूँ। विधि से अविधि से, किसी प्रकार से भी मेरी जो उपासना करते हैं उनको मैं प्रसन्न होकर फल देता हूँ।(शि. गी. 12/3-7)

ये त्वन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव राजेन्द्र यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।
यस्मात्सर्वमिंद विश्वं मत्तो न व्यतिरिच्यते।
सर्वक्रियाणां भोक्ताहं सर्वस्याहं फलप्रदः।।
येनकारेण ये मर्त्या मामेवैकमुपासते।

तेनाकारेण तेभ्योऽहं प्रसन्नो वाञ्छितं ददे।।
विधिनाऽविधिना वापि भक्त्या ये मामुपासते।
तेभ्यः फलं प्रयच्छामि प्रसन्नोऽहं न संशयः।। (शि. गी. 12/4-7)

उपासना की विधि चार प्रकार की है-संपत्, आरोप, संवर्ग और अध्यास। अल्प वस्तु का भी गुणयोग से मन की वृत्ति से अनन्त गुणों की भावना से चिन्तन करना(जैसे मूर्ति में अनन्त गुणविशिष्ट भगवान् का ध्यान करना) संपत् कहलाता है। एक देश वा अंग में सम्पूर्ण उपास्य वस्तु का आरोप करके जो उपासना होती है उसे आरोप कहते हैं जैसे ओंकार की उदगीथसामरूप से उपासना करना। बुद्धिपूर्वक किसी वस्तु में विवक्षित धर्म का आरोप करके उसकी उपासना करना अध्यास कहलाता है। आरोप और अध्यास का स्वरूप बहुधा एक सा ही होता है उसमें थोड़ा ही फर्क है। उदाहरणार्थ कन्या को देवीरूप मानना। कर्म या क्रियायोग से उपासना करने का नाम संवर्ग है। (शि. गी. 12/10-14)

उपासना अंतरंग एवं बहिरंग दो प्रकार से होती है। केवल अन्तःकरण से ही सब पूजन की कल्पना करना अंतरंग उपासना कहलाती है। संपदादि जो चार प्रकार की उपासना बतायी गयी है वह दृढ़ बुद्धि की उपासना है। (सगुण उपासना में)मूर्ति की उपासना करते समय उसके प्रत्येक अंगों में अक्षय दृष्टि लगाकर उपासना करनी चाहिये। (शि. गी. 12/15, 17)

उपासना के लिये जहाँ अपना चित्त स्वच्छ और एकाग्रता युक्त हो वहाँ सुख से कम्बल अथवा मृगचर्म पर स्थितहोकर गर्दन एवं शरीर को सीधा रक्खें तत्पश्चात् विधिपूर्वक भस्मधारण[1] कर सम्पूर्ण इन्द्रियों को रोककर तथा भक्तिपूर्वक गुरु को प्रणाम करके ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त प्राणायाम करे। पश्चात् शुद्ध स्फटिकमणि के समान शरीरवाले अर्द्धांग में पार्वती को धारण किये, व्याघ्रचर्म ओढ़े नीलकण्ठ, त्रिलोचन, जटा-जूट धारण किये, चद्रमा सिर पर धरे, नागों का यज्ञोपवीत पहने, पीठ की ओर के उँचे दोनों हाथों में मृग और परशु धारण किये, सब अंगों में विभूति लगाये तथा सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित भगवान् शिव का ध्यान करे।(शि. गी. 12/18-31)

भगवान् शिव कहते हैं कि वेद एवं शास्त्र के वचनों से मुझे कोई नहीं पा(जान) सकता परन्तु जो एकाग्रचित्त से सदैव मेरा ध्यान करता है, मैं उसे प्राप्त होता हूँ और उसका फिर त्याग नहीं करता। जो पाप से विमुख नहीं है, जिसकी तृष्णा शान्त नहीं है, श्रवण, मनन, निदिध्यासन से जिसका मन समाहित नहीं है, जिसका मन चंचल है ऐसा पुरुष शास्त्र के अध्ययन से मुझे नहीं जान सकता।(शि. गी. 12/32-33)

श्रीराम द्वारा भक्तिसंबंधी प्रश्न करने पर भगवान् शिव कहते हैं कि जो यज्ञ, दान, स्वाध्याय जप-तप आदि कर्मों को करते हुए इन्हें मुझे अर्पण कर देते हैं, वे मेरे प्रिय भक्त हैं। अग्निहोत्र की पवित्र भस्म लाकर अथवा उसे श्रोत्रिय ब्राह्मण के स्थान से लाकर "**अग्निरिति**" इत्यादि मंत्रों से

1. भस्मधारण कि विधि उपनिषद्वाले अध्याय में दी गयी है। उसी विधि को यहाँ स्वीकार किया गया है।

यथाविधि अभिमंत्रित कर अपने शरीर में उसे लगाकर और भस्म द्वारा ही जो मेरा अर्चन करता है उससे अधिक मेरी भक्ति करनेवाला दूसरा नहीं है। जो प्राणी मस्तक और कण्ठ में रुद्राक्ष को धारण करता है और पंचाक्षरी(‘**नमः शिवाय**’) का जप करता है वह मेरा भक्त है और मुझे प्यारा है। भस्म लगानेवाला, भस्म पर शयन करनेवाला, सदा जितेन्द्रिय तथा रुद्रसूक्त का जापक और अनन्य बुद्धि से मेरा चिन्तन करनेवाला सदेह शिवस्वरूप हो जाता है। जो रुद्रसूक्त व अथर्वशीर्ष के मन्त्रों का जप करता है, कैवल्योपनिषद् व श्वेताश्वतर उपनिषद् का जप करता है उससे अधिक मेरा दूसरा भक्त इस लोक में नहीं है।(शि. गी. 15/1-8)

भगवान् शिव आगे कहते हैं-सम्पूर्ण वेद-शास्त्र तथा उपनिषदादि जिसका प्रवचन करते हैं तथा जिसकी प्राप्ति के लिये मुनिगण ब्रह्मचर्यादि नियमों-साधनों का पालन करते हैं, उस ओंकाररूपी अक्षर का अवलम्बन मैं ही हूँ। यह चतुर्मात्रात्मक ओंकार(अकार, उकार, मकार एवं अर्धमात्रा) मेरा ही स्वरूप है। यह सम्पूर्ण पूर्वोत्पन्न, वर्तमान एवं जायमान चित्र-विचित्र संसार इस ओंकार में प्रतिष्ठित है। यह ओंकार शिव का रूप है। अतः इस सम्पूर्ण विश्व को सनातन ब्रह्मस्वरूप ओंकार शिव में प्रविलीन करते हुए नित्य उसका जप करना चाहिये। जो ऐसा करता है वह मुक्त ही है इसमें सन्देह नहीं।

जातं च जायमानं च तत्सर्वं रुद्र उच्यते।
तस्मिन्नेव पुनः प्राणाः सर्वमोङ्कार उच्यते।।
प्रविलीनं तदोङ्कारे परं सनातनम्।
तस्मादोङ्कारजापी यः स मुक्तो नात्र संशय।। (शि. गी. 15/23-24)

वे पुनः कहते हैं कि श्रौत, स्मार्त अथवा शैवाग्नि से उत्पन्न भस्म को ॐकार से अभिमन्त्रित करके ओंकार द्वारा जो मेरा पूजन करता है, उससे अधिक संसार में मेरा प्रियभक्त नहीं है। घर अथवा वन की अग्नि की भस्म को ओंकार से अभिमंत्रित करके जो अपने शरीर में लगाता है वह शूद्र होने पर भी मुक्त हो जाता है। दर्भांकुर(कुशपुष्प), बिल्वपत्र तथा वन-पर्वत में पैदा हुए फूलों से ओंकार द्वारा जो मेरी नित्य पूजा करता है वह मेरा प्रिय है। पुष्प, फल, मूल, पत्र अथवा जल को जो ओंकार जप-पूर्वक मेरे निमित्त दान करता है तो उसका फल वह करोड़ गुना हो जाता है। प्रदोष के समय जो मेरे स्थान में जाकर मेरी पूजा करता है वह पराश्री को प्राप्त कर अन्त में मुझमें लीन हो जाता है। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या इन तिथियों में सर्वांग भस्म लगाकर रात्रि के समय जो मेरा पूजन करता है, वह मेरा भक्त मुझे अति प्रिय है। जो एकादशी के दिन व्रती रहकर प्रदोष के समय मेरा पूजन करता है और विशेष करके जो सोमवार के दिन मेरी पूजा करता है वह भक्त मुझे प्रिय है। जो पंचामृत, पंचगव्य, पुष्प, सुगन्धयुक्त जल अथवा कुश के जल से मुझे स्नान कराता है; दूध, घी, मधु, गन्ने के रस, पके आम के फल अथवा नारियल के जल से अथवा गंधयुक्त जल से रुद्रमंत्र[1] उच्चारण करता

1. यहाँ रुद्रमंत्र का अर्थ रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों से है।

हुआ मेरा अभिषेक करता है उससे अधिक मुझे कोई प्यारा नहीं है। (शि. गी. 15/25-35)

पुनः जो जल में स्थित हो सूर्य की ओर मुख किये ऊपर को बाहें उठाये सूर्य के बिम्ब में मेरा ध्यान करता हुआ अथर्वांगिरस का जप करता है वह मेरे शरीर में प्रवेश कर जाता है। जो ईशावास्यादि मंत्रों को सावधान हो मेरे सम्मुख जप करता है। वह मेरी सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हो मेरे लोक में अक्षय सुख भोगता है।(शि. गी. 15/36-39)

भगवान् राम पुनः भागवान् शिव से प्रश्न करते हैं कि-भगवन्! इस मोक्षमार्ग के अधिकारी कौन हैं? इसके उत्तर में शिवजी कहते हैं-चारों वर्ण, चारों आश्रम तथा स्त्रियाँ भी पाशुपत-व्रत की अधिकारिणी हैं। जिसे मेरी पूजा में विशेष भक्ति हो, वे सभी अधिकारी हैं।(शि. गी. 16/1-4)

अज्ञों का उपहास करनेवाले, भक्तिहीन, विभूति एवं रुद्राक्षधारी पाशुपतव्रतवालों से द्वेष करनेवाले-इनमें से किसी का भी इस मार्ग का अधिकार नहीं है। जो मुझसे, ब्रह्म का उपदेश करनेवाले गुरु से, पाशुपतव्रत धारण करनेवालों से या विष्णुजी से द्वेष करता है, उसका करोड़ जन्मों में भी उद्धार नहीं होता। चाहे कोई अनेक प्रकार के यज्ञादि कर्म में तत्पर हो पर वह शिवज्ञान से रहित हो तो उसमें शिवभक्ति न होने के कारण संसार से मुक्त नहीं हो सकता।(शि. गी. 16/5-7)

काशी, द्वारका, श्रीशैल पर्वत, व्याघ्रपुर(पुण्डरीक)-इन क्षेत्रों में शरीर छोड़ने से व्यक्ति को शिव की कृपा से तारकब्रह्म की प्राप्ति होती है।(शि. गी. 16/9)

तीर्थ के फल को प्राप्त करने का अधिकारी कौन है? इसकी चर्चा करते हुए शिवगीता में कहा गया है कि जिसके हाथ-पैर और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा मन वश में हैं, जो विद्या, तप एवं कीर्ति से युक्त हैं वे ही तीर्थ का फल प्राप्त करते हैं।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।। (शि. गी. 16/10)

भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि नामसंकीर्तन एवं ध्यान में सबका अधिकार है। ध्यान की श्रेष्ठता बताते हुए कहते हैं कि तप, वेदाध्ययन आदि दूसरे कर्म ध्यान के सहस्त्रांश भी नहीं हैं। जाति, आश्रम, अंग, देश, काल एवं आसनादि साधन कोई भी ध्यानयोग के समान नहीं हैं। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति सभी पातकों से मुक्त हो जाता है।(शि. गी. 16/12-15)

आगे भगवान् शिव नाम की महिमा के बारे में बताते हैं। वे कहते हैं कि अतिआश्चर्य, भय तथा शोक प्राप्त होनेपर वा छींकने अथवा किसी रोग में किसी भी बहाने से मेरा नाम उच्चारण करनेवाला परमगति को प्राप्त हो जाता है। पापी भी यदि देहान्त में मेरा स्मरण करे व इस(**नमः शिवाय**) पंचाक्षरी विद्या का उच्चारण करे तो निःसन्देह उसकी मुक्ति हो जाती है।(शि. गी. 16/17-18)

आश्चर्ये वा भये शोके क्षुते वा मम नामयः।

व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स याति परमां गतिम्।।
महापापैरपि स्पृष्टो देहान्ते यस्तु मां स्मरेत्।
पञ्चाक्षरीं वोच्चरति स मुक्तो नात्र संशयः (शि. गी. 16/17-18)

विभूति और रुद्राक्ष सबको धारण करना चाहिये-चाहे वे योगी ही क्यों न हों। शिवभक्ति प्राप्त करनेवाले को ये दोनों धारण करना जरूरी है। जो अग्निहोत्र की भस्म और रुद्राक्ष धारण करता है वह महापापी होने पर भी मुक्त हो जाता है। अन्तकाल में जो रुद्राक्ष एवं विभूति धारण किये हुए हो तो उसे चाहे महापाप ही लगे हों तथा नरों में भी नीच हो तो उसे यमदूत स्पर्श नहीं करते। भगवान् शिव यह भी कहते हैं कि शिवोपासना के अन्य कर्म करे अथवा न करे जो केवल शिव का नाम जपता है वह सदा मुक्तस्वरूप है।

अन्यानि शैवकर्माणि करोतु न करोतु वा।
शिवनाम जपेद्यस्तु सर्वदा मुच्यते तु सः।। (शि. गी. 16/22)

"जो कोई बेलवृक्ष के जड़ की मिट्टी शरीर में लगाता है उसके निकट यमदूत नहीं जा सकते"-ऐसा कहकर बिल्व-वृक्ष की महत्ता को बताया गया है।

बिल्वमूलमृदा यस्तु शरीरमुपलिम्पति।
अन्तकालेऽन्तकजनैः स दूरीक्रियते नरः।। (शि. गी. 16/25)

भगवान् शिव से रामजी पुनः प्रश्न करते हैं कि- "किन मूर्तियों में पूजन करने से आप प्रसन्न होते हैं?" भगवान् शिव उत्तर देते हैं-मिट्टी, गोबर, भस्म, चंदन, रेत, काष्ठ, पत्थर, लोहा, केशरादि रंग, कांसा, जस्ता, पीतल, तांबा, रूपा, सोना, अनेक प्रकार के रत्न, पारा अथवा कपूर-इनमें से जो प्राप्त हो सके और जो इष्ट हो उससे शिवलिंग की मूर्ति बनाये। इस प्रकार प्रीति से मेरी उपासना करे तो कोटिगुना फल होता है। गृहस्थी पुरुषों को मिट्टी, काष्ठ, लोहा, कांसा अथवा पत्थर की प्रतिमा का पूजन करने से सदा आनन्द की प्राप्ति होती है। बिल्ववृक्ष के नीचे अथवा उसके फल में जो मेरी आराधना करता है वह महालक्ष्मी को प्राप्तकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त होता है। बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर जो विधिपूर्वक मन्त्रों को जपे तो एक ही दिन में उसे पुरश्चरण का फल मिलता है। जो मनुष्य बेल के वन में कुटिया बनाकर नित्यप्रति निवास करे तो उसके जपमात्र से सब मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। पर्वत के ऊपर, नदी के किनारे, बिल्व के नीचे, शिवालय में, अग्निहोत्र की शाला में, विष्णु के मन्दिर में जो मन्त्र जपता है उसके जप में दानव, यक्ष, राक्षस विघ्न नहीं कर सकते। उसे कोई पाप स्पर्श नहीं कर सकता और वह शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है।(शि. गी. 16/27-36)

बिल्ववृक्षं समाश्रित्य यो मन्त्रान्विधिनाजपेत्।।
एकेन दिवसेनैव तत्पुरश्चरणं भवेत्।
यस्तु बिल्ववने नित्यं कुटिं कृत्वा वसेन्नरः।।

सर्वे मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति जपमात्रेण केवलम्।
पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले शिवालये।।
अग्निहोत्रे केशवस्य संनिधौ वा जपेत्तु यः।
नैवास्य विघ्नं कुर्वन्ति दानवा यक्षराक्षसाः।।
तं न स्पृशंति पापानि शिवसायुज्यमृच्छति। (शि. गी. 16/32-36)

ऊनी वस्त्र के आसनपर पूजा करने से मनुष्य की सब कामनायें पूरी हो जाती हैं। मृगचर्म के आसनपर पूजा करने से मुक्ति और व्याघ्रचर्म से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कुशासन से ज्ञान, पत्र के आसन से आरोग्यता, पत्थर के आसन से दु:ख एवं काष्ठ के आसन से अनेक प्रकार के रोग होते हैं। वस्त्र के आसन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। पुन: पृथ्वी पर बैठकर जपने से मंत्र सिद्ध नहीं होता। उत्तर वा पूर्व को मुख करके जप और पूजा करनी चाहिये।(शि. गी. 16/39-41)

माला के बारे में बताया गया है कि स्फटिक की माला से साम्राज्यपद, कुश की ग्रन्थि की माला से आत्मज्ञान और रुद्राक्ष की माला से सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धी होती है। 108 मनकों की माला सबसे उत्तम होती है। माला को जप करते समय गुप्त रखनी चाहिये।(शि. गी. 16/50)

योनिमुद्रा(बाँया चरण गुदास्थान पर रखें अर्थात् वहाँ एड़ी लगावें और दाहिना चरण उपस्थ के ऊपर रखकर बैठें) के आसन से बैठकर सावधान होकर जप करने से प्रत्येक मंत्र अवश्य सिद्ध हो जाता है(शि. गी. 16/52-53, 55)। ब्राह्ममुहूर्त से लेकर मध्याह्न कालतक मंत्र का जप करना चाहिये, उसके उपरान्त जप करने से कर्त्ता का नाश होता है-यह सम्पूर्ण काम्यफलों के पुरश्चरण की विधी है। परन्तु नित्य-नैमित्तिक तपश्चर्या का नियम नहीं है, चाहे जबतक जितनी इच्छा हो जप करता रहे, उसमें कोई दोष नहीं होता।(शि. गी. 16/56-58)

भगवान् शिव कहते हैं कि जो मेरी मूर्ति का ध्यान करता हुआ निष्काम बुद्धि से रुद्राध्याय, षडक्षर(ॐ **नमः शिवाय**), ओंकार अथवा अथर्वशीर्ष वा कैवल्य उपनिषद् के मंत्रों का जो जितेन्द्रिय होकर जप करता है वह उसी देह से स्वयं शिव हो जाता है।(शि. गी. 16/59-60)

यस्तु रुद्रं जपेन्नित्यं ध्यायमानो ममाकृतिम्।
षडक्षरं वा प्रणवं निष्कामो विजितेन्द्रियः।।
तथाथर्वशिरोमन्त्रं कैवल्यं वा रघुत्तम।
स तेनैव च देहेन शिवः संजायते स्वयम्।। (शि. गी. 16/59-60)

भगवान् शिव कहते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गुरुमूर्ति या आत्मरूप में जो मनुष्य मेरी उपासना करते हैं उन्हें लवमात्र की पूजा से ही सम्पूर्ण फल एवं सायुज्य की प्राप्ति होती है(शि. गी. 16/36-37)। अपनी आत्मा में जो पूजन करता है, उसकी बराबरी का दूसरा पूजन नहीं(परन्तु ऐसा करना सबसे कठिन है) हैं।

पुनः भगवान् शिव कहते हैं कि "मेरे भक्त पापरहित हो जाते हैं, उनका कभी नाश नहीं होता। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तों का कभी नाश नहीं होता" (यदि वे बीच में ही सिद्धी प्राप्त होने से पूर्व मर जाते हैं तो वे योगी के घर में जन्म ले सत्संग को प्राप्त हो मुक्त हो जाते हैं) (शि. गी. 17/36)। "जो मूर्ख मेरे भक्तों की निन्दा करता है वह साक्षात् मेरी ही निन्दा करता है और अगर प्रेम से उनका पूजन करता है तो वह मानो मेरा ही पूजन करता है" (शि. गी. 17/37)। "जो प्रेम से, मेरे आराधन के निमित्त, पत्र, पुष्प, फल या जल नियमित होकर प्रदान करता है वह भक्त मेरा प्यारा है" (शि. गी. 17/39) ।

"कोई मुझे ज्ञान से देखते हैं, कोई ध्यान से, कोई भक्तियोग और कोई कर्मयोग से अर्थात् कर्मकाण्ड के माध्यम से। परन्तु इन सब भक्तों में वह मुझे सबसे अधिक प्यारा है जो नित्य ज्ञान द्वारा मेरी आराधना करता है।"

ध्यायेन मां प्रपश्यंति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे।।
सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम।
योहि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा।। (शि. गी. 17/51-52)

मोक्ष या परमात्मा की प्राप्ति के लिये काम, क्रोध, पिशुनता, पाखण्ड, माया, मोह, लोभ एवं शोक को शनैः शनैः छोड़ना चाहिये। इसी प्रकार सभी सिद्धियों को भी तृण के समान त्याग देना चाहिये चाहे वे स्वयं ही क्यों न प्राप्त होें। किये हुए कर्मों के फल की इच्छा न करना तथा उनका त्याग कर सदा संगरहित होना चाहिये। इस प्रकार शून्य वा अशून्य में होकर कुछ भी न विचारे। न कुछ चिन्तन करे, न कल्पना करे, न मनन करे, कारण कि वे (शिव) मन के भी परे हैं। मन के नष्ट होने से चिन्ता और इन्द्रियों का लय हो जाता है फलस्वरूप उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। (शि. गी. 18/26-34)

जिसमें मोह और अहंकार नहीं है, जो संपूर्ण संग से रहित है तथा जो सभी प्राणियों में अपने को और अपने में सभी प्राणियों को देखता है, वह जीवनमुक्त है। जिसके हृदय की सारी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, वह जीवनमुक्त है और अमृतत्त्व को प्राप्त होता है।

निर्मोहो निरहंकारो निर्लेपः संगवर्जितः।
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
यः पश्यनसंचरत्येष जीवन्मुक्तोऽभिधीयते।।
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य वशं गताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम्।। (शि. गी. 13/29 तथा 31)

मोक्ष न स्वर्ग की तरह और न ही किसी दूसरे नगर या ग्राम की तरह कोई स्थान है अपितु हृदयस्थित अज्ञानग्रन्थि के नाश हो जाने का नाम ही मोक्ष है–

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ।। (शि. गी. 13/32)

ज्ञानीपुरुष चाहे तीर्थ में शरीर छोड़े या चाण्डाल के घरपर, वह ज्ञान के द्वारा ही मुक्त हो जाता है–

तीर्थे चाण्डालगेहे वा यदि वा नष्टचेतनः।
परित्यजन्देहमिमं ज्ञानादेव विमुच्यते।। (शि. गी. 13/34)

शिवगीता में आया है कि–

"भगवान् राम ने अगस्त्यजी के उपदेशानुसार शिवलिंग की स्थापना कर विरजादीक्षा ले सर्वांग में विभूति लगाकर रुद्राक्ष धारणकर शिवलिंग को गोदावरी के जल से अभिषेककर वन के फल–फूलों से पूजन किया। वे भस्म पर सोते तथा व्याघ्रचर्म के आसन पर बैठे रात–दिन अनन्य बुद्धि से शिवसहस्त्रनाम[1] का जप करते थे।" (शि. गी. 4/2–4)

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि शिवसहस्त्रनाम का जप भी भगवान् शिव के दर्शन का एक अच्छा साधन है। "यह शिवसहस्त्रनाम सब वेदों का सार है तथा शिवजी को प्रत्यक्ष करनेवाला है" ऐसा कहकर अगस्त्यजी ने राम से कहा कि तुम इसे दिन–रात जपो।

वेद साराभिधं नित्यं शिवप्रत्यक्षकारकम्।
उक्तं च तेन राम त्वं जप नित्यं दिवानिशम्।। (शि. गी. 3/32)

ईश्वरगीता में शिवतत्त्व

ईश्वरगीता कूर्म पुराण के उपरिभाग के प्रारंभ में ही पायी जाती है। इसमें लगभग 500 श्लोक हैं। इसमें शिवगीता के बहुत से श्लोक पाये जाते हैं। यह गीता भी भगवद्गीता या शिवगीता की तरह धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व रखती है। इसपर अनेक विद्वानों द्वारा टीका लिखी गयी है जिनमें से विज्ञानभिक्षु, यज्ञेश्वरसूरी एवं भासुरानन्द प्रसिद्ध हैं।

सूतजी से ऋषियों ने सम्पूर्ण संसार के दुःखों को नष्ट करनेवाले ब्रह्मविषयक ज्ञान सुनाने का आग्रह किया था। वह ब्रह्मविषयकज्ञान पूर्वकाल में कूर्मरूप धारणकर विष्णुजी ने मुनियों को बतलाया था। उसी ज्ञान को व्यासजी सूतजी एवं मुनियों के समक्ष बताने से पहले कहते हैं कि यह ज्ञान प्राचीन काल में सनत्कुमार आदि प्रमुख योगीश्वरों द्वारा पूछनेपर स्वयं प्रभु महादेवजी ने बताया था।

1. शिव सहास्त्रनाम कई प्रकार के हैं यहाँपर श्रीराम जिस सहस्त्रनाम का जप करते थे वह सहस्त्रनाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। यह सहस्त्रनाम तण्डि ऋषि द्वारा भूलोक पर प्रचारित किया गया था। यह सहस्त्रनाम महाभारत (17/31–153 अनुशा. प.) में पाया जाता है।

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को ईश्वर, महादेव, भूतपति, मुनियों के स्वामी, तपस्या द्वारा पूजित होनेवाले देव, सहस्रमूर्ति, विश्वात्मा, जगत्रूपी यन्त्र के प्रर्वतक, संसार के जन्म, रक्षा एवं संहार के कर्त्ता, ईशान, शम्भु, अम्बिकापति, परमेश्वर, शशांकशेखर, त्रिलोचन आदि कहा गया है(ईश्वरगीता 1/31-35)। उन्हें वृषध्वज तथा त्रिशूलधारी भी कहा गया है(ई. गी. 1/42, 43)।

भगवान् शिव कहते हैं कि समस्त वेदों में सर्वात्मा एवं सर्वतोमुख के रूप में प्रतिपादित मायावी, अव्यक्त, परमेश्वरस्वरूप मैं ही यह आत्मा हूँ। मैं अर्न्तयामी, सनातन, सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर और सभी ओर हाथ-पैरवाला हूँ। हाथ और पैर के बिना भी मैं गति करने एवं ग्रहण करनेवाला हूँ। मैं सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। मैं बिना नेत्रों के देखता एवं बिना कानों के सुनता भी हूँ। मैं इस सम्पूर्ण जगत् को जानता हूँ। तत्त्वदर्शी लोग मुझे अद्वितीय महान् पुरुष कहते हैं(ई. गी. 2/45-48)। वे पुनः कहते हैं कि मैं सर्वव्यापी ज्ञानस्वरूप शान्त परमेश्वर ब्रह्म हूँ। मेरी अपेक्षा उत्कृष्टतर कोई तत्त्व नहीं है। मेरा ज्ञान प्राप्त करने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस जगत् में मुझ व्योमस्वरूप अव्यक्त महेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई स्थावर जङ्गमात्मक नित्य तत्त्व नहीं हैं(ई. गी. 3/20-21)।

सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते।।
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्।। (ईश्वरगी. 3/20-21)

भगवान् शिव सभी पदार्थों के भीतर स्थित हैं फिर भी लौकिक प्राणी उन सर्वसाक्षी को नहीं जान पाते। मुनि, देवता, ब्रह्मा, मनु, इन्द्र एवं अन्य अतितेजस्वी लोग भी उन्हें नहीं देख पाते। वेद निरन्तर उनकी अद्वितीय परमेश्वर के रूप में स्तुति करते हैं। वैदिक यज्ञों द्वारा लोग अग्निस्वरूप भगवान् शिव का ही पूजन करते हैं। भगवान् शिव ही सभी देवों का शरीर ग्रहण कर सम्पूर्ण हवियों का भोग करनेवाले एवं सभी फल को देनेवाले हैं।(ई. गी. 4/3-8)

सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुखः।।
न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः।
ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः।।
अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्थितः।। (ईश्वरगी. 4/4-5, 8)

भगवान् शिव ने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा की रचना कर उन्हें वेदों का ज्ञान दिया। वे ही सभी योगियों के सनातन गुरु, धार्मिकों के रक्षक तथा विद्वेषियों को नष्ट करनेवाले हैं। वे ही संसार के

कारण, पालक एवं संहार करनेवाले मायावी हैं। माया उनकी शक्ति है जिससे वे लोक को मोहित करते हैं। वे सम्पूर्ण शक्तियों के प्रवर्त्तक, निवर्त्तक एवं आधार हैं। उनकी एक शक्ति ब्रह्मा का रूप धारणकर विविध जगत् की सृष्टि करती है। दूसरी शक्ति जगन्नाथ नारायण का रूप धारणकर जगत् की रक्षा करती है तथा रुद्ररूपिणी काल नाम तीसरी तामसी शक्ति सम्पूर्ण जगत् का संहार करती है।(ई. गी. 4/15-18, 20-23, 6/3 आदि)

भगवान् शिव का वाचक ॐकार है तथा यह ओंकार ही मुक्ति का बीज है(ई. गी. 5/29)। एक स्थल पर ऋषियों ने भगवान् शिव की स्तुति में कहा है- "आप ही विष्णु, चतुरानन, एवं भगवान् ईश रुद्र हैं। आप विश्वनाभि, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर, एवं परमेश्वर हैं। आपको अद्वितीय, पुराणपुरुष, आदित्यवर्ण, तमोगुणातीत, चिन्मात्र, अव्यक्त, अचिन्त्यरूप, आकाश, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति एवं निर्गुण कहते हैं।"(ई. गी. 5/36-37)

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानधीशः।
त्वं विश्नाभिः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि।।
त्वमेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिन्त्यरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिं निर्गुणं च।।

(ईश्वरगी. 5/36-37)

ईश्वरगीता के छठे अध्याय में भगवान् शिव ऋषिगणों को अपना सर्वव्यापी स्वरूप बतलाकर अपनी भगवत्ता का निरूपण करते हैं। वे कहते हैं कि मैं ही सब कुछ हूँ और सभी देवी-देवता, जड़-चेतन उनकी आज्ञा के अनुसार ही अपना-अपना कार्य करते हैं। जिसके द्वारा मोहरूपी कल्मष को धोकर उस परमपद का दर्शन होता है वह विद्या भी महेश की आज्ञा के वश में रहनेवाली है। यह संसार उनकी शक्ति से ही शक्तिमान् है। उनके द्वारा ही सम्पूर्ण जगत् प्रेरित किया जाता है और उनमें ही उसका लय हो जाता है। वे ही भगवान्, ईश, स्वयंप्रकाश, सनातन, परमात्मा और परम ब्रह्म हैं। उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।(ई. गी. 6/49-51)

विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत् पदम्।
साऽपि विद्या महेशस्य नियोगवशवर्तिनी।।
बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत्।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत्।।
अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते।। (ई. गी. 6/49-51)

संसार के सभी जीवों को पशु कहा जाता है। ज्ञानीलोग उन पशुओं के पतिस्वरूप भगवान् शिव को पशुपति कहते हैं। वे अपनी लीलावश इन पशुओं को मायारूपी पाश से बाँधते हैं। वेदवादी लोग

उन्हें ही पशुओं को मुक्त करनेवाला कहते हैं। उन अव्यय भूताधिपति परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मायारूपी पाश में बँधे हुए लागों को मुक्त करनेवाला नहीं है।(ई. गी. 7/18-20)

आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्त्तिनः।
तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः।।
मायापाशेन बध्नामि पशुनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशुनां वेदवादिनः।।
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्।। (ई.. गी. 7/18-20)

आत्मा का बन्धन करने के कारण क्लेश नामक अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश इन अचल तत्त्वों को पाश कहा जाता है। माया को इन पाँचों पाशों का कारण कहा जाता है। वह अव्यक्त मूलप्रकृतिस्वरूप शक्ति भगवान् शिव में रहती है। वे ही मूलप्रकृति, प्रधान एवं पुरुष हैं। महत्तत्त्व आदि विकार हैं। वे देवाधिदेव सनातन हैं। वे ही बन्धन एवं बन्धन करनेवाले और वे ही पाश एवं पशु हैं। वे सभी कुछ जानते हैं, किन्तु उनको जाननेवाला कोई नहीं है। उन्हें आदि पुराणपुरुष कहा जाता है।(ई. गी. 7/29-32)

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं चाभिनिवेशकम्।
क्लेशाख्यानचलान् प्राहुः पाशानात्मनिबन्धनान्।।
एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति।।
स एव मूल प्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च।
विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः।।
स एव बन्धः स च बन्धकर्त्ता स एव पाशःपशवःस एव।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।। (ई. गी. 7/29-32)

ऋषियों के पूछने पर कि "आप परमेश्वर निष्कल, निर्मल, नित्य, तथा निष्क्रिय होनेपर भी विश्वरूप कैसे हैं?" भगवान् शिव कहते हैं- "द्विजो! मैं विश्व नहीं हूँ और मुझसे अतिरिक्त विश्व भी नहीं है। यह सब माया के निमित्त से है और वह माया भी आत्मा को आश्रित कर रहती है। आदि और अन्त से रहित शक्तिरूप माया परमात्मा पर आश्रित है, माया के कारण परमात्मा से यह प्रपञ्चरूप संसार उत्पन्न हुआ है। मुझ अव्यक्त को कारण कहा जाता है। मैं ही आनंदस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, अक्षर परम ब्रह्म हूँ। मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण ब्रह्मवादियों ने मेरा विश्वरूपत्व निश्चित किया है.....मैं कारणरहित, सनातन, परम ब्रह्म परमात्मा हूँ, अतः मुझमें कोई दोष नहीं है(ई. गी. 9/1-6)।" तात्पर्य यह है कि जगत् में विषमता, क्रूरता आदि दोषों का असाधारण कारण

मनुष्यकृत कर्म हैं, ईश्वर नहीं। ईश्वर तो सामान्यकारण है, अत: वह दोषरहित है।

एक स्थल पर भगवान् शिव ऋषियों से कहते हैं कि "जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वर को एक ही भाव से देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये आदि और अन्त से रहित आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो।" वे पुन: कहते हैं कि- जो लोग विष्णु को दूसरा देवता मानकर मुझे दूसरा देवता समझकर देखते हैं, वे घोर नरकों में जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ(ई. गी. 11/114-116)। यहाँ भाव यह है कि भगवान् शिव ही विष्णु आदि रूपों में लीला कर रहे हैं। अत: जो व्यक्ति सर्वत्र(न कि केवल भगवान् विष्णु में) भगवान् शिव के ही दर्शन करता है और सर्वत्र उनकी विभूति के ही दर्शन करता है वही मोक्ष का अधिकारी है। वास्तव में तीनों देव(ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) तात्त्विक दृष्टि से एक ही हैं-वे सब सदाशिव की ही विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। अत: यहाँ उपदेश यह है कि हम भेद-दृष्टि न रखकर सबमें भगवान् शिव को ही देखें और शिव समझकर उनकी उपासना करें।

येत्विमं विष्णुमव्यक्तं मां वा देवं महेश्वरम्।
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः।।
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्।
मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि।।
येऽन्था मां प्रपश्यन्ति मत्वेमं देवतान्तरम्।
ते यान्ति नरकान् घोरान् नाहं तेषु व्यवस्थितः।। (ई. गी. 11/114-116)[1]

शिवोपासना

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं कि भगवान् शिव ही लीलावश जीवरूपी पशुओं को मायारूपी पाश से बाँधते हैं तथा उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी माया-रूपी पाश में बँधे हुए लोगों को मुक्त करनेवाला नहीं है(ई. गी. 7/18-20)। शिवजी कहते हैं कि जो दूसरे देवों के भक्त हैं, वे यदि मेरी भावना से युक्त होकर(दूसरे) देवताओं की पूजा करते हैं अर्थात् दूसरे देवों में मेरी ही भावना करते हैं तो वे भी(मुझमें) भावना करने के कारण मुक्त हो जाते हैं। अतएव समस्त अनीश्वर देवताओं[2] का परित्यागकर जो मुझ ईश का ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है(ई. गी. 11/90-91)।

1. ये तीनों श्लोक थोड़े अन्तर के साथ पद्मपुराण(स्वर्गखण्ड 50/19-22) में भी पाये जाते हैं।

2. एक ही देवता पूजक की दृष्टि में तबतक अनिश्वर है, जबतक पूजक उसे किसी तुच्छ फल का अधिष्ठतामात्र समझता है। अगर उसी देवता को परमेश्वर के भाव से निष्काम होकर पूर्ण समर्पण-भाव के साथ पूजा जाय तो वह देवता अनीश्वर नहीं रह जाता। उपरोक्त उद्धरण (11/90) से स्पष्ट है कि देवता विशेष में ईश्वर की भावना रखनेवाला भी मुक्त हो जाता है।

अतः मोक्षप्राप्ति के लिये भगवान् शिव की उपासना करनी चाहिये। ईश्वरगीता में ज्ञान, ध्यान, कर्म, योग, भक्ति आदि साधन मोक्षप्राप्ति के लिये सुझाये गये हैं।

(ज्ञानमार्गी) मोक्षार्थियों को अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापी एवं अव्यय(शिवरूप आत्मा) की उपासना तथा उसका श्रवण एवं मनन करना चाहिये। जिस समय मुमुक्षु अपने आत्मा में ही सभी भूतों को एवं सभीभूतों में अपने आत्मा को देखने लगता है उस समय उसे ब्रह्म(शिव) की प्राप्ति होती है। जब वह पारमार्थिकरूप में केवल अद्वितीय आत्मा(शिव) का साक्षात्कार करता है एवं सम्पूर्ण जगत् को मायामात्र समझने लगता है, उस समय वह शान्त(मुक्त) हो जाता है।(ई. गी. 2/29-31)

भगवान् शिव कहते हैं कि मनुष्य श्रेष्ठ भक्ति के बिना अनेक प्रकार के तप, दान एवं यज्ञों द्वारा मुझे नहीं जान सकता।(ई. गी. 4/2)

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्।। (ई. गी. 4/2)

उपरोक्त उद्धरण का यह अभिप्राय नहीं है कि यज्ञ, दान, तप का कोई मूल्य नहीं है। यहाँ तो सिर्फ यही कहना है कि इनसे न तो ईश्वर की प्राप्ति और न ही मोक्ष मिल सकता है। इन क्रियाओं से लौकिक एवं स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति तथा अनेक प्रकार के दुःखों से निवृत्ति हो सकती है। पुनः ये क्रियायें चित्त को शुद्ध करने में सहायक हो सकती हैं बशर्ते निष्काम भाव से की जायँ।

भगवान् शिव कहते हैं कि कुछ लोग ध्यान द्वारा, अन्य लोग ज्ञान द्वारा, दूसरे लोग भक्ति योग से एवं अन्य कुछ लोग कर्मयोग के द्वारा मेरा साक्षात्कार करते हैं। जो ज्ञान द्वारा शिवजी की नित्य आराधना करता है वह अन्य सभी प्रकार के भक्तों में भगवान् शिव का सर्वाधिक प्रिय होता है। परन्तु ज्ञान की साधना सर्वसुलभ नहीं है।

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे।।
सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा।। (ई. गी. 4/24-25)

भगवान् शिव की आराधना करनेवाले अन्य जो तीन प्रकार(कर्ममार्गी, ध्यानी, भक्तियोगी) के भक्त हैं वे भी उन्हें प्राप्त करते हैं एवं उनका पुनर्जन्म नहीं होता। भगवान् शिव, शिवगीता की भाँति यहाँ भी कहते हैं कि-मेरे भक्तों का विनाश नहीं होता। मेरे भक्त निष्पाप हो जाते हैं। प्रारम्भ में ही मैंने प्रतिज्ञा की है कि मेरे भक्त नष्ट नहीं होते। जो मेरे भक्त की निन्दा करता है वह मूढ़ देवाधिदेव का निन्दक होता है। जो भक्तिपूर्वक भक्त की पूजा करता है वह सदा मेरी पूजा करता है। मेरी आराधना के लिये जो नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल एवं जल प्रदान करता है वह मेरा प्रिय भक्त है।(ई. गी. 4/12-14)

न मद्भक्ता विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
आदावेतत् प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति।।
यो वै निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति।
यो हि तं पूजयेद् भक्त्या स पूजयति मां सदा।।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः।। (ई. गी. 4/11-14)

(प्रकृति एवं महदादि)चौबीस तत्त्व, माया, कर्म और गुण-ये पशुपति के पाश एवं जीवरूपी पशुओं को बाँधनेवाले क्लेश हैं। बन्ध नामवाले दो पाशों को धर्म एवं अधर्म कहा गया है। भगवान् शिव को अर्पित किये गये कर्म बन्धन नहीं करते(ई. गी. 7/28)। अर्थात् भगवद्अर्पण बुद्धि से समस्त कर्मों को करनेवाला पाशों में नहीं बँधता(धर्मयुक्त कार्य भी अगर सकाम है तो वह बन्धन का कारण होता है) और वह मुक्त हो जाता है।

ईश्वरगीता के 11वें अध्याय में योगसाधना के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है एवं ज्ञान से योग की प्रवृत्ति होती है। योग एवं ज्ञान से सम्पन व्यक्ति पर महेश्वर प्रसन्न होते हैं। जो नित्य एक समय, दो समय या तीन समय शैवयोग का साधन करते हैं उन्हें महेश्वर जानना चाहिये।(ई. गी. 11/3-4)

योग दो प्रकार का होता है-अभावयोग एवं महायोग। जिसमें सभी आभासों से रहित शून्यमय स्वरूप का चिन्तन होता है एवं जिसके द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है उसे अभाव योग कहते हैं। जिसमें नित्यानन्दस्वरूप निरञ्जन आत्मा एवं शिव में अभेद प्रतीति होती है उसे परमेश्वरस्वरूप महायोग कहा गया है। अन्य सभी प्रकार के योगों में श्रेष्ठ वह योग है जिसमें विमुक्त पुरुष विश्व को साक्षात् ईश्वर के रूप में देखते हैं(ई. गी. 11/5-9)। इस गीता में योग के प्रकार बतलाने के बाद अष्टांगयोग(जिसकी चर्चा पतंजलि के योगसूत्रों में की गयी है) का सविस्तार वर्णन किया गया है।

भलीभाँति सुरक्षित, सुन्दर पवित्र स्थान, पर्वत की गुफा, नदी के तट, पवित्रदेश, देवमंदिर, सुंदर पवित्र गृह एवं जन्तुओं से रहित स्थानों में भगवान् शिव के भक्तों को, श्रेष्ठ योगियों, उनके शिष्यों, गणेश, गुरु एवं भगवान् शिव को नमस्कार करने के बाद सावधानीपूर्वक योगानुष्ठान करना चाहिये(ई. गी. 11/50-52)। योगदर्शन के अष्टांगयोग को ही थोड़े-बहुत संशोधन के साथ स्वीकार कर उसे पाशुपतयोग नाम दिया गया है।

भगवान् शिव कहते हैं कि-मुझमें मन लगानेवाला, मुझे नमस्कार करनेवाला एवं मेरी आराधना करनेवाला मत्परायण व्यक्ति मुझे प्राप्त कर लेता है। इस संसार में जो मनुष्य मुझमें चित्त लगाकर मेरा पूजन करते हैं उनके योग-क्षेम का मैं निर्वाह करता हूँ। पुत्र, स्त्री, गृह आदि में आसक्ति का परित्यागकर और शोकरहित तथा अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुष को मृत्युपर्यन्त(शिव) लिङ्ग में

परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण भोगों को त्यागकर सदा लिङ्ग का पूजन करते रहते हैं, उन्हें मैं एक जन्म में ही परम ऐश्वर्य प्रदान करता हूँ।

येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगनशेषतः।
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमैश्वरम्।। (ई. गी. 11/93)

नियमपूर्वक भक्ति करनेवाले दूसरे लोग विधिपूर्वक कहीं भी (शिवलिङ्ग की) भावना करते हुए उस महेश्वर के लिङ्ग की अर्चना करते हैं। जल में, अग्नि के मध्य में, आकाश में, सूर्य में, रत्नादि में अथवा अन्यत्र कहीं भी ईश्वरीय लिङ्ग की भावना करके ईश की उपासना करनी चाहिये। यह सम्पूर्ण जगत् लिङ्गमय है एवं यह (सम्पूर्ण संसार) लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है। अतएव जहाँ कहीं भी लिंगस्वरूप में शाश्वत ईश की आराधना करनी चाहिये। क्रियाशीलोंका[1] (लिङ्ग) अग्नि में; मनीषियों[2] का जल, आकाश और सूर्य में; अज्ञानियों[3] का काष्ठ आदि में और योगियों[4] का लिङ्ग हृदय में स्थित रहता है (ई. गी. 11/95-98)।

अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम्।
काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गं तु योगिनाम्।। (ई. गी. 11/98)

ओंकार को भगवान् शिव का वाचक तथा मुक्ति का बीज माना गया है (ई. गी. 5/29) इसलिए उन्हें ओंकारमूर्ति भी कहते हैं (ई. गी. 8/9)। जिस व्यक्ति को ज्ञान नहीं हुआ है उस पुरुष को वैराग्य एवं प्रीतिपूर्वक जीवनपर्यन्त एकाग्र मन से ब्रह्म के शरीरस्वरूप प्रणव (ॐकार) का जप करना चाहिये अथवा संयत चित्तवाले एकाकी द्विज को मरणपर्यन्त शतरुद्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने से वह परमपद प्राप्त करता है (ई. गी. 11/99-100)। जो पुरुष एकाग्र मन से मरणपर्यन्त वाराणसी में निवास करता है उसे भी ईश्वर के अनुग्रह से परमपद प्राप्त होता है। वाराणसी में प्राण निकलते समय महेश्वर सभी प्राणियों को श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करते हैं जिससे वे बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। नीच एवं पाप योनिवाले प्राणी भी वाराणसी में निवास करने के कारण ईश्वर के अनुग्रह से संसार से तर जाते हैं, किन्तु पापाक्रान्त चित्तवाले मनुष्यों को वहाँ निवास करने में विघ्न होते हैं। अतएव

---

1. 'क्रियाशील' शब्द से उन द्विजों को समझना चाहिये जो श्रौत-स्मार्त क्रियाओं में दत्तचित्त हैं। इनका प्रमुख आराध्य अग्नि होता है।

2. 'मनीषी' शब्द से उन्हें समझना चाहिये जो यथाविधि श्रौत-स्मार्त क्रियाओं के अनुष्ठान से शुद्धान्तःकरण होकर ब्रह्मनिष्ठा की ओर अग्रसर हैं।

3. 'अज्ञानी' शब्द से उन्हें समझना चाहिये जो वेद-शास्त्र के प्रति निष्ठावान् हैं, पर इहलौकिक विविध ऐश्वर्यों के प्रति आसक्त हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित हैं।

4. 'योगी' शब्द से ब्रह्मनिष्ठ को समझना चाहिये। ब्रह्मनिष्ठ होने से पूर्व संयत एवं एकाग्रचित्त अनासक्त साधक की एक भूमिका होती है। इस भूमिका के लोग भी यहाँ 'योगी' समझे जा सकते हैं।

मुक्ति के लिये निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये(ई. गी. 11/101-102, 104-105)।

भगवान् शिव कहते हैं कि जो नारायण हैं, वही मैं ईश्वर हूँ। नारायण नामवाली तथा शान्त अक्षर-संज्ञक मेरी यह परम मूर्ति सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है। लोक में जो भेद दृष्टिवाले लोग इसके विपरीत समझते हैं, वे मेरा दर्शन नहीं कर पाते और बार-बार संसार में जन्म लेते हैं। जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वर को एक ही भाव से देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये आदि और अन्त से रहित आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो। जो लोग विष्णु और मुझको अलग-अलग देवता के रूप में देखते हैं वे घोर नरक में जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो, पण्डित हो, ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल हो, मेरे आश्रित रहनेवाले प्रत्येक को मैं मुक्त कर देता हूँ, किन्तु जो नारायण की निन्दा करनेवाले हैं उन्हें मैं मुक्त नहीं करता। इसलिये मेरे भक्त मुझमें प्रीति उत्पन्न करने के लिये भगवान् विष्णु की पूजा एवं वन्दना किया करें(ई. गी. 11/111-118)।

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्।
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्।।
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि।। (ई. गी. 11/117-118)

महेश्वरगीता में शिवतत्त्व

इस गीता में मुख्यतः वर्ण एवं आश्रम से संबंधित सामान्य एवं विशेष धर्मों की सविस्तार व्याख्या की गयी है। परन्तु शिव के स्वरूप एवं उपासनाविधि पर भी अत्यन्त संक्षिप्त चर्चा है। इस गीता में लगभग 400 श्लोक हैं। इस गीता का आरम्भ पार्वती एवं शिव के प्रश्नोत्तर से होता है।

इसमें भगवान् शिव के साकार विग्रह के सन्दर्भ में एक विलक्षण बात बतलायी गयी है कि प्रारंभ में शिव के पास एक मुख था पर बाद में अपनी योगशक्ति से 4 मुँह बना लिये(पाँच नहीं)।(महेश्वरगीता 4 एवं 48)। अतः वे पंचानन न होकर चतुरानन[1] ही माने गये हैं। कहीं-कहीं आजकल भी देवमंदिरों में उनके पाँच मुख की जगह चार मुख ही दिखाये गये होते हैं।

भगवान् शिव पार्वती को बतलाते हैं कि मैं पूर्व दिशावाले अपने मुख से इन्द्रपद का शासन करता हूँ, उत्तर दिशावाले मुख से तुम्हारे साथ संवाद का सुख प्राप्त करता हूँ। पश्चिम दिशा में स्थित मेरा मुख सौम्य है, वह सारे प्राणियों के लिये सुखदायक है। दक्षिण दिशा में स्थित मुख भयानक तथा रौद्र है, उसके द्वारा संपूर्ण प्रजा का संहार किया जाता है। वे पुनः कहते हैं कि लोककल्याण की भावना

1. यहाँ हमें यह नहीं शंका करनी चाहिये कि वे सामान्य विश्वासों के विपरीत पंचानन की जगह चतुरानन क्यों हुए। वास्तव में भगवान् शिव या अन्य देवों के अलग-अलग कल्पों में जो अवतार होते हैं उनमें थोड़ा बहुत अन्तर आ जाता है। जिन कल्पों में वे चतुरानन थे उन्हीं कल्पों की कथा के अनुसार यह गीता कही गयी होगी।

से मैंने जटाधारी ब्रह्मचारी का वेश धारण किया हुआ है। देवताओं के हित साधनार्थ मेरे हाथ में सदा धनुष रहता है।(महेश्वरगीता 5 - 7)

वे पुनः कहते हैं कि जब महासागर मथा जाने लगा तब उसमें से सभी लोकों को नष्ट करने में समर्थ विष प्रकट हुआ तब तीनों लोकों का हितसाधन करने के लिये मैंने उस विष का पान किया। तभी से मुझे सब नीलकण्ठ कहने लगे। भगवान् शिव के बारे में कहा गया है कि वे जिस धनुष को धारण करते हैं उसका नाम पिनाक है, इसे पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने उन्हें दिया था। उसी समय ब्रह्माजी ने एक दूसरा धनुष भगवान् विष्णु को दिया था जिसका नाम शाङ्र्ग रखा गया। इसी प्रकार उन्हें वृषध्वज एवं वृषवाहन बनाने में ब्रह्माजी का ही हाथ है।

आगे पार्वती के पूछने पर कि वे स्वर्ग को छोड़कर श्मशान भूमि में क्यों रहते हैं? भगवान् शिव उत्तर देते हैं कि मैं पवित्र स्थान की खोज करने के लिये सदा सम्पूर्ण पृथ्वी पर रात - दिन घूमता रहता हूँ। परन्तु श्मशानभूमि से श्रेष्ठ कोई अन्य स्थान मुझे दिखाई नहीं दिया। इसलिये श्मशानभूमि में ही मेरा मन लग पाता है। श्मशानभूमि से पवित्र कोई अन्य स्थान नहीं है क्योंकि वहाँ अधिक मनुष्य आते - जाते नहीं। यह वीरस्थान है, इसलिये मैं वहाँ रहता हूँ। भूतों से उत्पन्न भय को मेरे अतिरिक्त और कोई भी दूर नहीं कर सकता। इसलिये मैं श्मशान में निवास करता हुआ नित्यप्रति प्रजाओं का पालन करता हूँ। मेरी आज्ञा के अनुसार ही अब यह भूत समुदाय किसी की हत्या नहीं करते। मैं उन भूतों को सम्पूर्ण विश्व के हितार्थ श्मशानभूमि में रखता हूँ।(महेश्वरगीता 35 - 37)

पार्वती के पुनः प्रश्न करने पर कि वे अपना रूप पिङ्गल, विकृत और विकराल क्यों रखते हैं? अपने सारे शरीर में भस्म क्यों रमाते हैं? आपके नेत्र विरूप दिखाई देते हैं। तीक्ष्ण दाढ़ें, शीश पर जटाएँ, बाघाम्बर धारण किए हुए आप अपने मुख पर कपिल वर्ण की मूँछे रखते हैं। आपका रौद्र, भयानक और घोर रूप है, आप शूल व पट्टिश धारण किये हुए हैं। इन सबका क्या कारण है?

उत्तर में महेश्वर कहते हैं कि जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ शीत और उष्ण के भेद से दो भागों में विभक्त हैं। अग्नि - सोमरूप यह सम्पूर्ण विश्व उन शीत एवं उष्ण तत्त्वों में गुंथा है। सौम्य गुण सदा भगवान् विष्णु में स्थित रहता है और आग्नेय गुण मुझमें। इस प्रकार विष्णु और शिवरूप से मैं सब लोकों कि सदा रक्षा करता हूँ। मेरा विरूप नेत्र, शूल, पट्टिशयुक्त तथा रौद्र आकृतिवाला रूप ही आग्नेय है। यह सम्पूर्ण विश्व के हित में सदा लगा रहता है। यदि मैं इस रूप को त्याग दूँ और इसके विपरीतरूप धारण कर लूँ तो सभी लोकों की दशा भी विपरीत हो जायगी। मैंने लोककल्याण की इच्छा से ही अपना यह रूप बनाया है।(महेश्वरगीता 37 - 44)

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भगवान् शिव का सगुण - साकाररूप चतुर्मुख है। उनकी अशुभ एवं विकराल वेशभूषा, विचित्र वाहन वृषभ, अपवित्र निवासस्थल श्मशान, भूत - पिशाचों की सेना साथ रखना, गरलपान करना तथा पिनाक आदि धारण करना लोकहितार्थ तथा प्राणियों के पालनार्थ है।

पुनः भगवान् शिव ही विष्णु तथा रुद्ररूप से सृष्टि की व्यस्था का संचालन करते हैं अर्थात् वे ही विष्णु एवं शिव है। भगवान् शिव की स्तुति करते समय ऋषियों द्वारा महेश्वर गीता में कहलवाया गया है कि वे सर्वेश्वर, जगद्गुरु, देवादिदेव, चतुर्मुख तथा भूतपति आदि हैं(महेश्वरगीता 46 - 49)

नमः शङ्कर सर्वेश नमः सर्वजगद्गुरो।
नमो देवादिदेवाय नमः शशिकलाधर।।

.....

नमः सोमाय देवाय नमस्तुभ्यं चतुर्मुख।
नमो भूतपते शम्भो जह्नुकन्याम्बुशेखर।।

..... (महेश्वरगीता 46 - 49)

पार्वतीजी ने लोककल्याणार्थ धर्म का स्वरूप कथन करने की प्रार्थना की तो भगवान् शिव ने धर्म का पहला लक्षण "अहिंसा" ही बतलाया। "किसी प्राणी की हिंसा न करना, सत्यवचन, जीवों पर दया, मन एवं इन्द्रियों का संयम, यथाशक्ति दान - यही गृहस्थाश्रम का श्रेष्ठ धर्म है। परनारी के संसर्ग से बचना, किसी की वस्तु बिना पूछे न लेना, माँस - मदिरा का सेवन न करना - ये नियम कल्याणकारी हैं(महे. गी. 57 - 59)। आगे चलकर समस्त प्राणियों की रक्षा और यज्ञादि के नाम पर किसी प्रकार की हिंसा न करने पर जोर दिया गया है। हिंसा के दोष से मुक्त हुआ जो पुरुष सब प्राणियों को अभय प्रदान करता है, वही धर्म के फल को पाता है। सभी प्राणियों पर दया करनेवाला, सबके प्रति सरल भाव से वर्तनेवाला और सब प्राणियों को अपने समान देखनेवाला धर्म का सम्पूर्ण फल पाता है।(महेश्वरगीता 239 - 240)

अधिकांश विद्वान् वैष्णव, जैन एवं बौद्ध धर्म को ही अहिंसा और जीवदया का विशेष रूप से अनुयायी मानते हैं, और शैव तथा तांत्रिकों में जो शिव के उपासक हैं उनको नहीं मानते क्योंकि उनमें मांस - मद्य आदि का बन्धन कम देखने में आता है। पर महेश्वरगीता में सर्वत्र अहिंसा का ही प्रतिपादन किया गया है।

महेश्वरगीता में अधिकांश धर्मशास्त्रों में वर्णित चारों वर्णों और आश्रमों के धर्मों का ही वर्णन किया गया है पर इस संबंध में महेश्वरगीता के विचार ज्यादा उदार हैं। उदाहरण के लिये महेश्वरगीता में कहा गया है कि - "मेरे(शिवजी के) मत में तो यदि शूद्र के स्वभाव और कर्म, दोनों ही श्रेष्ठ हैं तो उसे द्विजातियों से अधिक समझना चाहिये। ब्रह्मणत्व केवल योनि, संस्कार, शास्त्रज्ञान और संतति से ही प्राप्त नहीं होता, उसका प्रधान कारण तो सदाचार है। .....जो शूद्र सदाचारी है, वह भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता है।[1](महेश्वरगीता 320 - 322)

स्वभावः कर्म च शुभं यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति।

1. महेश्वरगीता के ये दोनों श्लोक थोड़े शब्दों के परिवर्तन के साथ ब्रह्मपुराण(223/55 - 57) में भी पाये जाते हैं।

विशिष्टः स द्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मतिः।।
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च संतति।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्।।

पुनः "यदि कोई शूद्र शुभ कर्मों और अच्छे आचरणों को करे तो वह भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो सकता है।" (महेश्वरगीता 297)

वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति।।

ब्राह्मण की परिभाषा भगवान् शिव ने यह दी है- "जिसके अन्तर में निर्गुण और निर्मल ब्रह्म का ज्ञान स्थित है, वही यर्थाथरूप में ब्राह्मण है।" (महेश्वरगीता 323)[1]

ऐसे ब्राह्मण की भगवान् शिव प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि- "ब्राह्मण को भूमि का देवता माना गया है.....यदि वे न हों तो लोक-परलोक दोनों ही स्थित नहीं रह सकते। जो मनुष्य ब्राह्मणों की निन्दा करता है, उनका धन छीन लेता है, उनपर प्रहार करता या उन्हें क्रोध दिलाता है अथवा काम, लोभ, मोह के वश में उनसे नीच कर्म करवाता है वह मेरा ही अपमान करता, मुझे क्रोध दिलाता, मुझपर ही प्रहार करता, मेरा धन ले लेता और मुझसे ही नीच कर्म कराता है।" (महेश्वरगीता 67-70)

उपसंहार

तीनों गीताओं में भगवान् शिव को जगत् का कारण, पर ब्रह्म, निर्गुण एवं सगुण रूपधारी, लोककल्याणकारी, सृष्टि, संहार एवं पालन कर्त्ता तथा मुक्तिदाता बताया गया है। उनकी उपासना के सन्दर्भ में बताया गया है कि उन्हें ज्ञान, भक्ति, कर्म, ध्यान-योग आदि किन्हीं भी साधनों से पाया जा सकता है। भक्ति की बहुत प्रशंसा की गयी है। भक्ति में भाव की प्रधानता होती है। शिव गीता में कहा गया है कि अनादर से, मूर्खता से, परिहास से, कपट से भी जो मनुष्य शिवभक्ति करते हैं वे चांडाल होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। पुनः शिवभक्ति में देश-काल तथा स्थान का भी कुछ नियम नहीं है, जहाँ जब जिसका चित्त रमे वहीं और उसी समय ध्यान करे। शिव भक्ति के सभी वर्ण तथा आश्रम के लोग अधिकारी हैं।

शिवगीता में आगे कहा गया है कि ओंकार शिव का रूप है अतः विश्व को सनातन ब्रह्मस्वरूप ओंकार शिव में प्रविलीन करते हुए नित्य उसका जप करना चाहिये। इस प्रकार से जप करने पर व्यक्ति मुक्त हो जाता है। इस गीता में रुद्राक्ष एवं भस्म का माहात्म्य बतलाकर कहा गया है कि इसे सभी को धारण करना चाहिये। पंचाक्षर या षडाक्षर मन्त्र की भी काफी महिमा बताकर कहा गया है कि इसके जप से मुक्ति हो जाती है। लिंगपूजा, बिल्वपत्र तथा वृक्ष एवं काशीवास की महिमा बताकर उन्हें मोक्षदायक कहा गया है।

---

1. **निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः।।**

भगवान् शिव कहते हैं कि उन्हें श्रेष्ठ भक्ति के बिना अनेक प्रकार के तप, दान, एवं यज्ञों द्वारा नहीं जाना जा सकता। शिवप्रोक्त गीताओं में यह भी कहा गया है कि जो लोग दूसरे देवताओं की भक्ति भगवान् शिव में आस्था रखते हुए करते हैं वे भी मुक्त हो जाते हैं। इनमें यह भी कहा गया है कि भगवान् विष्णु एवं भगवान् शिव दोनों ही तत्त्वत: एक हैं। फलस्वरूप जो इनमें अन्तर करते हैं वे भगवान् शिव का दर्शन नहीं कर पाते। नारायण एवं रुद्र दोनों निर्गुण भगवान् सदाशिव के दो रूप हैं। इसी कारण से भगवान् शिव कहते हैं कि मेरे भक्तों को भगवान् नारायण की निन्दा नहीं करनी चाहिये, उनकी भी वंदना करनी चाहिये।

महेश्वरगीता में सगुण साकार शिव को चर्तुर्मुख बताया गया है। उनकी अशुभ एवं विकराल वेशभूषा, विचित्र वाहन वृषभ, अपवित्र निवासस्थल श्मशान, भूत-पिशाचों की सेना साथ रखना, गरलपान आदि लोकहितार्थ तथा प्राणियों के पालनार्थ ही हैं। उन्हें जगद्गुरु, मोक्षदायक एवं देवाधिदेव कहा गया है। महेश्वरगीता में अहिंसा पर अधिक बल दिया गया है। वर्णव्यवस्था को गुण एवं कर्मों पर आधारित माना गया है जिसमें शूद्र अपने कर्मों द्वारा ब्राह्मणत्व तथा ब्राह्मण शूद्रत्व प्राप्त कर सकता है।

भक्तों की प्रशंसा करते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि जो उनको कष्ट पहुँचाता है वह मुझे कष्ट पहुँचाता है तथा जो उनकी पूजा करता है वह मेरी पूजा करता है। मैं अपने भक्तों के योग-क्षेम को स्वयं ही वहन करता हूँ।

(प्रस्तुत लेख मुख्यत: निम्न पुस्तकों पर आधारित है : 1-1989 में वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित तथा पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा भाषा-टीका कृत 'शिवगीता'। 2-गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण का कूर्मपुराणांक तथा 3-महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय 141 से 143)

S S S S S S S S

निद्रा की विनाशक शक्ति

निद्रा मूलमधर्मस्य निद्रा पापविवर्द्धिनी।
निद्रा दारिद्र्यजननी निद्रा श्रेयोविनाशिनी।।

(नारद महापु. उ. ख. 15/30-31)

अर्थात्-अधर्म की जड़ निद्रा है। निद्रा पापों को बढ़ानेवाली, दरिद्रता की जननी तथा श्रेय का विनाश करनेवाली है।